भारत का एक सुप्रसिद्ध हिन्दी कृषि समाचार-पत्र (न्यूज़ पेपर)

खेती दुनिया

www.khetiduniyan.in

Excellence in Agri Info

KHETI DUNIYAN, PATIALA

All Subject to Patiala Jurisdiction.

BOOK POST – PRINTED MATTER

KHETI DUNIYAN

• Issue Dated 02-12-2023 • Vol.7 No.48 • H.O. : KD Complex, Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) Ph. : 0175-2214575 • Page : 08 E-mail : khetiduniyan1983@gmail.com

देश के कई राज्यों में बारिश कोहरे का आलम

रबी फसलों को हो रहा फायदा

इस समय देशभर में मौसम का मिजाज बदल रहा है। जो गेहूं की फसल के लिए फायदेमंद साबित होगा। तापमान 15 से 16 डिग्री सैल्सियस चल रहा है, जो फसल के लिए फायदेमंद है। कुछ जगहों पर थोड़ी ज्यादा बारिश हुई है, जिसका फसल पर सकारात्मक असर पड़ेगा। इतना ही नहीं जिन किसानों ने अगेती फसल बोई थी, उनकी पानी की कमी भी दूर हो गई है। बारिश की वजह से पहली सिंचाई हो गई है। इसके अलावा जिन किसानों की बुवाई समय पर हो गई है, उनमें अंकुरण हो गया है। ऐसे में हल्की बारिश से सकारात्मक असर पड़ेगा।

इन क्षेत्रों में धान की कटाई लेट

भारतीय गेहूं एवं जौ अनुसंधान केन्द्र के डायरैक्टर डॉ. ज्ञानेन्द्र सिंह के मुताबिक हरियाणा के 500 किलोमीटर क्षेत्र का भ्रमण किया। जिसमें करनाल से कैथल, जींद, नरवाना, रतिया, फतियादाबाद, सिरसा, हिसार शामिल है। इन क्षेत्रों में केवल रतिया ही ऐसा क्षेत्र है, जहां पर धान की कटाई लेट हुई है। बाकी 20 से 25 क्षेत्र में गेहूं की बुवाई पैंडिंग है। इसके अलावा हरियाणा में करीब 90 प्रतिशत क्षेत्र में गेहूं की बिजाई हो चुकी है।

भारत सरकार ने तय किया गेहूं का लक्ष्य

भारत सरकार ने 114 मिलियन टन गेहूं का लक्ष्य रखा है। गेहूं की फसल 32 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में उगाई जाती है। हरियाणा और पंजाब में गेहूं की औसत पैदावार अन्य राज्यों से अधिक है। हरियाणा और पंजाब राज्यों की खासियत यह है कि इन दोनों राज्यों में गेहूं की अगेती बुवाई होती है। जिसके कारण दोनों राज्यों की औसत उपज अन्य राज्यों की तुलना में थोड़ी अधिक है। क्योंकि यहां ठंड का मौसम मध्य भारत की तुलना में अधिक समय तक रहता है। अधिक उपज का कारण यह है कि यहां कोहरा रहता है, जिसके कारण तापमान कम रहता है। हरियाणा और पंजाब में नई किस्मों और नई प्रौद्योगिकियों के बारे में अधिक जागरूकता है। ऐसे में जो तकनीकें उन्हें दी जाती है, वो उन्हें तेजी से अपनाते हैं।

गेहूं की फसल के लिए बारिश वरदान

इस समय जौं मौसम चल रहा है वह गेहूं की फसल के लिए बहुत अच्छा है। इस समय गेहूं के लिए मौसम जितना अनुकूल रहेगा उसकी उपज क्षमता उतनी ही बेहतर होगी। सिंचाई जितनी अच्छी होगी, गेहूं की पैदावार उतनी ही अच्छी होगी। मौजूदा मौसम गेहूं की फसल के लिए हर लिहाज से उपयुक्त है।

कश्मीर के बाद अब मुक्तसर में होने लगी बिना मिट्टी और केमिकल के केसर की खेती

दो भाईयों ने कमरे को दिया कश्मीर जैसा कृषि माहौल

कश्मीर के बाद अब पंजाब के मुक्तसर में केसर की खेती होनी शुरू हो गई है। दो भाईयों ने दो साल की कड़ी मेहनत के बाद केसर की खेती करने में सफलता हासिल की है। उन्होंने करीब 300 ग्राम केसर पैदा करने में सफलता हासिल की है। रघु गुंबर व सोमील गुंबर दोनों भाई मुक्तसर के रहने वाले हैं। वह बिना मिट्टी, खाद और केमिकल के केसर की खेती कर रहे हैं। उन्होंने पिछले साल अगस्त माह में केसर की खेती की शुरूआत घर से ही की थी, लेकिन सौ दिन बाद उनकी कोशिश नाकाम होने लगी। इस साल फिर से केसर की खेती की और सफल रहे।

रघु गुंबर ने बताया कि उन्होंने काफी रिसर्च करने के बाद अपने घर में एक घास वातानुकूलित 10×10 का एक कमरा तैयार किया है, जिसे चिलर से ठंडा किया जाता है। इस कमरे में केसर की फलियां (बीज) लकड़ी की ट्रे रखी जाती हैं। इसके लिए लगभग सौ दिन तक पर्याप्त शीतलता और प्रकाश वाला भौतिक वातावरण तैयार किया गया है। 200 दिन बाद केसर के फूल खिले। फूलों से उन्हें करीब 200 से 300 ग्राम केसर प्राप्त हुई। इस प्रोजैक्ट पर करीब 5 लाख खर्च हुए हैं। केसर के फूलों को तोड़ कर रस निकाला जाता है, जिसका उपयोग औषधियों में किया जाता है। विदेशी बाज़ार में शुद्ध केसर की कीमत 6 से 8 लाख रुपए प्रति किलो है, वहीं भारत में 3 से 5 लाख रुपए है। वह केसर को आयुर्वेदिक कम्पनी को बेचेंगे। केसर की खेती के लिए तापमान का विशेष ध्यान रखना होता है। उन्होंने 23 तापमान से शुरू किया था और अब 6 तक चल रहा है। इसे 4 तक कर सकते हैं। एरोपोनिक फार्मिंग से (ऐसी खेती है, जिसमें पौधों की जड़ें हवा में झूलती हैं। ये जड़ें दिख भी जाती हैं, क्योंकि इनका मिट्टी से कोई लेना-देना नहीं होता। इन जड़ों के माध्यम से भी पौधों को पोषण दिया जाता है और उन्हें बढ़ने का मौका मिलता है)। एक सीज़न में 100-150 किलो तक बीज पैदा हो जाता है।

कोल्ड स्टोर में वातावरण अनुकूल कमरा तैयार कर शुरू की केसर की खेती

उन्होंने बताया कि जल्द ही वह बॉक्स की संख्या बढ़ा कर अधिक केसर का उत्पादन करेंगे। रघु गुंबर ने बताया कि पहले केसर की खेती केवल कश्मीर तक ही सीमित थी, लेकिन अब मुक्तसर में भी शुरू हो गई है। केसर के बीज वह कश्मीर से लेकर आए और उन्होंने जहां कोल्ड स्टोर में वातावरण अनुकूल कमरा तैयार कर खेती की है, वहीं वह सफल भी हुए हैं। सबसे पहले उन्होंने इसके बारे में रिसर्च की। पहले उन्हें काफी परेशानियां भी झेलनी पड़ी, लेकिन बाद में उन्होंने समस्याओं का समाधान किया। उन्होंने एक ऐसा कमरा तैयार किया, जैसा कि वातावरण कश्मीर का होता है। रघु ने बताया कि जो वह कश्मीर से बीज लेकर आते उनका दो से तीन दिन तक ट्रीटमेंट होता है और इसके बाद इन्हें कंट्रोल वातावरण में रखा जाता है। समय के अनुसार कमरे का वातावरण बदला जाता है। केसर की खेती के लिए किसी स्प्रे का केमिकल की ज़रुरत नहीं होती है, बिल्कुल ऑर्गेनिक केसर की खेती की जाती है।

दोनों भाई अपने काम के साथ-साथ करते हैं केसर की खेती

सोमील ने बताया कि वह दोनों भाई केसर की खेती के साथ-साथ अन्य कार्य भी करते हैं। सोमील ने बताया कि वह बैंक में कार्यरत हैं, जबकि उसका भाई रघु जोकि एल.एल.बी. है और वह प्रॉपर्टी डीलर का कार्य करता है। उन्होंने बताया कि इस खेती के लिए उन्हें ज्यादा समय की ज़रुरत नहीं पड़ती। जब उन्हें समय मिलता है, वह इसकी देखभाल कर जाते हैं। इसके साथ अपना काम भी करते रहते हैं। उन्होंने सरकार से सब्सिडी व अन्य सुविधाओं की मांग की है, ताकि वह इस खेती को और बढ़ा सकें। उन्होंने कहा कि अगर कोई भी इसकी शिक्षा लेना चाहता है, तो वह सम्पर्क कर सकता है।

2.5 किलो बीज से पैदा होती 250 से 300 ग्राम केसर

केसर के लिए केवल कंट्रोल वातावरण की ज़रुरत होती है, जिसमें लाइट, टेंपरेचर एवं ह्युमिनिटी सिर्फ एक बार ही बीज खरीदने की ही ज़रुरत है। इसके बाद उन्हीं बीजों से ही और बीज पैदा हो जाते हैं। उन्होंने बताया कि बाज़ार से केसर के बीज की कीमत 600-800 रुपए किलो है। 2.5 किलो बीज से 250 से 300 ग्राम केसर पैदा होती है। उन्होंने करीब 250 किलो बीजों से इसकी शुरूआत की थी और इस बार उन्होंने 250 ग्राम केसर की पैदावार की है।

हकीकत भी बनें उपज की कीमत बढ़ाने के चुनावी वादे

देविंदर शर्मा

विश्व में सबसे पुराने नीलामी घरों में से एक है न्यूयार्क स्थित ऑक्शन हाउस सोदबी'ज, जिसे अब पेंटिंग, कलाकृतियों व प्रतिष्ठापूर्ण आभूषणों के बजाय कृषि पदार्थों के मूल्यों की ओर रुख करने पर विचार करना चाहिये। अपने पोर्टफोलियो का विस्तार करते हुए सोदबी'ज कृषि पदार्थों की कीमतों पर भी नीलामी शुरू करने की सोच सकता है।

यदि नीलामी घर कृषि उपज की ज्यादा ऊंची कीमतें प्राप्त करने का उद्यम शुरू करता है, वह भी ऐसे वक्त जब भारत में लोकतंत्र का उत्सव यानी चुनाव प्रक्रिया जारी हो तो वैश्विक स्तर पर सोदबी'ज एक लोकप्रिय नाम के तौर पर उभरकर सामने आयेगा। केवल भारत में ही नहीं बल्कि दुनियाभर में किसान उस नीलामी पर पैनी नजर रखेगा।

दरअसल, बीते दिनों छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश व राजस्थान में भाजपा और कांग्रेस पार्टी के घोषणापत्रों में किसानों के लिए किये वादों में अंतर मालूम करना मुश्किल हो रहा था, तो शायद सोदबी'ज किसानों को बेहतरीन कीमतें प्रदान करके कुछ और अच्छा कर सकती थी।

ज्यादा महत्वपूर्ण यह कि ऐसी किसी नीलामी के बाद जो अंतिम कीमत सामने आती है किसान को उस पर और ज्यादा यकीन होगा, इस उम्मीद के चलते कि नीलामी में भागीदारी कर रहे राजनीतिक दल अपने किये वादे से पीछे नहीं हटेंगे। चुनावी राज्य मध्यप्रदेश में सबसे पहले जारी किये गये कांग्रेस घोषणापत्र में गेहूं और धान के लिए ज्यादा ऊंची कीमतें प्रदान करने का वादा था।

धान के दाम प्रति क्विंटल 2,040 रुपये (पहले घोषित) के बजाय कांग्रेस ने 2,500 रुपये प्रति क्विंटल का आश्वासन दिया था। भाजपा का घोषणा पत्र भी उसके सियासी प्रतिद्वंद्वी द्वारा किये वादे के बराबर या उससे बढ़ कर बनाने की कोशिश की गयी। धान के मामले में, भाजपा ने 3100 रुपये प्रति क्विंटल घोषित किये। कांग्रेस ने भी बाद में इसके समान कर दिया। राजस्थान में कांग्रेस ने स्वामीनाथन के फार्मूले को लीगल गारंटी प्रदान करने का आश्वासन दिया था।

छत्तीसगढ़ में जहां पहले ही धान का खरीद मूल्य अधिक यानी प्रति क्विंटल 2,640 रुपये था, कांग्रेस पार्टी ने प्रति क्विंटल 3,200 रुपये का विश्वास दिलाया, इस आश्वासन के साथ कि प्रति एकड़ अंत के 20 क्विंटल इस दाम पर खरीदे जायेंगे। वहीं भाजपा के घोषणापत्र के मुताबिक, यदि पार्टी सत्ता में आती है तो वह धान का भाव 3,100 रुपये प्रति क्विंटल देगी और इस रेट पर वह प्रति एकड़ 21 क्विंटल खरीदेगी। तेंदु पत्ता के संग्रह के लिए भाजपा ने 5,500 रुपये का प्रस्ताव दिया तो कांग्रेस ने सालाना 4000 रुपये बोनस के साथ 6000 रुपये की घोषणा की थी।

अब, ऐसा क्यों है कि वादों के प्रति गंभीरता नहीं बरती जाती है। बीते दिनों आपने जिससे भी बात की उसीने यह कहा कि ये तो केवल चुनावी हथकंडे हैं, और जैसे ही चुनाव परिणाम आएंगे तो ये सियासी पार्टियां अपने वादों से पल्ला झाड़ लेंगी और असल में वे इन कीमतों को नकारने के लिए कोई बहाना ढूंढ लेंगी। जाहिर है, यह एक चुनौती बन जाती है कि कैसे चुनाव जीतने वाले दल अंततरू अपने वादे के मुताबिक काम करेंगे। यह भी कि यदि वे इस बार वादा पूरा करने में नाकाम रहे तो तो चुनावी वादे आगामी इलेक्शंस में अहमियत खो देंगे। ये मनोरंजन के अलावा कुछ भी नहीं रहेंगे।

यहां हम समझने का प्रयास करें कि क्यों संदेह जताये जा रहे हैं। दरअसल, दोनों ही राजनीतिक दलों ने उपज की इतनी कीमतें देने का चुनावी वादा किया जो डॉ. एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाले राष्ट्रीय किसान आयोग की सिफारिशों से भी बहुत ज्यादा बैठती है। कॉम्प्रिहेंसिव लागत पर 50 फीसदी लाभ (सी2+50 प्रतिशत) की सिफारिश के मुकाबले दोनों ही पार्टियों द्वारा धान और गेहूं के घोषित मूल्य उससे बहुत ज्यादा यानी (सी2+62 प्रतिशत) बनते हैं।

> एनडीए सरकार ने प्रांतों की सरकारों को निर्देश दिया था कि वे गेहूं और धान की खरीद के एमएसपी पर कोई बोनस न दें, यह कहते हुए कि यदि उन्होंने ऐसा किया तो केंद्र खरीद समर्थन वापस ले लेगा– तो क्या उच्चतर कीमत को खरीद कीमतों पर पर बोनस के रूप में नहीं देखा जाएगा? मुझे नहीं लगता कि हाल ही में इस पर कोई नीतिगत पुनर्विचार हुआ हो।

यहां सवाल उठता है कि जबसे यानी अक्तूबर 2006 से स्वामीनाथन आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी है, तबसे लेकर सत्ता में रही विभिन्न सरकारें इन कीमतों को लागू करने में हीला-हवाली करती रही है। यहां तक कि 2014 के राष्ट्रीय चुनावों में जब भाजपा ने किसानों को स्वामीनाथन कमेटी द्वारा सुझाए सी2़50 दाम देने का चुनावी वादा किया तो, सत्ता संभालने के तुरंत बाद सरकार ने यह कहते हुए सुप्रीम कोर्ट में हलफनामा दायर किया कि स्वामीनाथन फार्मूले के अनुरूप दाम प्रदान करना संभव नहीं क्योंकि यह मार्केट्स को विकृत कर देगा।

क्या अब दिये जाने वाले अधिक दाम 'मार्केट को नहीं बिगाड़ेंगे'? इन तमाम सालों में ऐसा क्या बदल गया कि अब राजनीतिक दल सोचने लगे हैं कि वे स्वामीनाथन द्वारा की गयी सिफारिशों से भी उच्च दाम दे सकते हैं? इसीलिए कि उपज की सी2+50 प्रतिशत से भी बढ़कर ऊंची कीमतें प्रदान करने का वादा गले नहीं उतर रहा है। अगर सी2+62 प्रतिशत कीमतें सही ही हों तो पार्टी बैनर से ऊपर उठकर सभी सियासी दलों का नेतृत्व समस्त देश में इसे एक समान कृषि कीमत बनाने के प्रयास क्यों नहीं करता है?

इसके अतिरिक्त, चूंकि एनडीए सरकार ने प्रांतों की सरकारों को निर्देश दिया था कि वे गेहूं और धान की खरीद के एमएसपी पर कोई बोनस न दें, यह कहते हुए कि यदि उन्होंने ऐसा किया तो केंद्र खरीद समर्थन वापस ले लेगा– तो क्या उच्चतर कीमत को खरीद कीमतों पर पर बोनस के रूप में नहीं देखा जाएगा? मुझे नहीं लगता कि हाल ही में इस पर कोई नीतिगत पुनर्विचार हुआ हो।

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में उपज की अधिक ऊंची कीमतें घोषित करने की दौड़ कम से कम यह तो मालूम हुआ कि जिस दुःख-दर्द को कृषक समुदाय झेल रहा है उसे समझने में नेता वर्ग ज्यादा बेहतर रूप से सक्षम है। वे जानते हैं कि क्यों किसान तनाव में जी रहे हैं, और उन्हें संकट की स्थिति से निकालने के लिए क्या किये जाने की जरूरत है? यह मानते हुए कि जब देश में किसानों की औसत मासिक आय (कृषक परिवारों के ताजा सिचुएशनल एसेसमेंट सर्वे के मुताबिक) बमुश्किल 10,218 रुपये बैठती है, तो कृषि आमदन में वृद्धि करने की तुरंत जरूरत है।

पर जब वही राजनीतिक नेता सरकार गठित करते है तो हकीकत यह है कि उन पर मुख्यधारा के अर्थशास्त्रियों और नौकरशाहों द्वारा इतना दबाव बनाया जाता है कि किसानों की आय में बढ़ोतरी करने की कोई भी बात बाजारों को बिगाड़ने वाली नजर आने लगती है। हकीकत में, यह एक तरह से मानसिकता की गड़बड़ी ही कही जाएगी जिसने कृषि को जान-बूझकर वंचित बनाए रखा है।

क्या ये चुनावी वादे असल में लागू किये जाएंगे, यह तो सिर्फ समय ही बतायेगा? देखते हैं, तीन दिसंबर को परिणाम घोषित होने के बाद क्या होता है।

लेखक कृषि एवं खाद्य विशेषज्ञ है।

गुरदासपुर के युवक द्वारा तैयार टाइल्स और पंखे का स्टैंड बना आकर्षण का केन्द्र

पराली से बना दीं टाइलें, आग और पानी का भी असर नहीं

पंजाब में पराली को आग लगाना एक बड़ा मुद्दा बना हुआ है। इस मामले को लेकर सरकार और किसान आमने-सामने हैं। वहीं, गुरदासपुर के एक नौजवान ने एक अलग तरह की पहल कर पराली से कई तरह के प्रोडक्ट तैयार कर मिसाल कायम की है। नौजवान का कहना है कि पंजाब में पराली को आग लगाने की बजाए इसका इस्तेमाल करने के लिए एक बड़ी इंडस्ट्री लगानी चाहिए। नौजवान द्वारा पराली से दीवार पर लगने वाली टाइप और सीलिंग फैन का स्टैंड तैयार किया है, जोकि आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

नौजवान परमिंदर सिंह ने बताया कि उसने खुद मशीन को तैयार कर पराली के विभिन्न प्रोडक्ट तैयार करने की कोशिश कर रहा है। उसने पराली से छत पर लगने वाली सीलिंग, दीवार पर लगने वाली टाइल और सीलिंग फैन का स्टैंड तैयार किया है, जोकि बाज़ार में मौजूद प्रोडक्ट के मुकाबले काफी अच्छा है। परमिंदर का कहना है कि पराली से तैयार हुए यह पैनल वाटर प्रूफ और हीट प्रूफ हैं और इनकी मज़बूती भी अधिक है। उसका मुख्य उद्देश्य पराली से तैयार प्रोडक्ट्स को बड़े स्तर पर बाज़ार में लाना है। लेकिन उसके लिए एक बड़ी इंडस्ट्री की ज़रुरत है, जिसके लिए उसने पंजाब व केन्द्र सरकार से मांग की कि राज्य में पराली से तैयार की जाने वाली वस्तुओं की एक बड़ी इंडस्ट्री लगाई जाए।

प्रदेश में 20 मिलियन टन पराली की पैदावार

परमिंदर ने बताया कि पंजाब में हर साल 20 मिलियन टन पराली की पैदावार होती है, जिसमें से 80 फीसदी पराली जला दी जाती है। इतनी बड़ी मात्रा में पराली जलाने की बजाए हम प्रोसेस में लाएं तो एक बड़ी मार्केट खड़ी हो सकती है कि पंजाब दुबई की मार्केट का मुकाबला कर सकता है। इन टाइलों को एक्सपोर्ट भी किया जा सकता है। दुबई मिट्टी इंपोर्ट करता है। पौधे लगाने के लिए क्योंकि वहां पर मिट्टी नहीं मिलती। अगर हम लोग पराली से बने सामान को भी दुबई में एक्सपोर्ट करें, तो उनके लिए भी फायदेमंद है। क्योंकि पराली से बनी चीजों को 10-15 साल इस्तेमाल करके उसे क्रश करके उसमें पौधे लगा सकते हैं, क्योंकि यह पानी को काफी देर तक अपने में समा कर रखती है।

परिवार का संबंध शुरू से इंडस्ट्री से है

परमिंदर ने बताया कि परिवार इंडस्ट्री से संबंधित है। इंडस्ट्री बैक ग्राउंड होने के कारण खून में एक्सपेरिमेंट करना है। कोरोना काल के दौरान भी एक हाइड्रो मशीन बनाई थी, जिसे सिविल में लगाया गया था। पराली को लेकर पंजाब में मसला उठा तो पराली से भी कुछ चीज़ें तैयार की जा सकती है।

गेहूं की पिछेती फसल में खरपतवार नियंत्रण

डॉ. विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान,
सुरेश कुमार एवं टोडरमल, सस्य विज्ञान विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004

गेहूं भारत की मुख्य अनाज की फसल है, जिसका उत्पादन लगभग 30.37 मिलियन हैक्टेयर में होता है। देश का कुल गेहूं उत्पादन 1960 के दशक की शुरूआत में 98.5 लाख टन से बढ़ कर 2021-22 में 1068.4 लाख टन हो गया है। भारत में परम्परागत रूप से गेहूं की खेती मुख्यत: उत्तरी भागों में होती है। भारत के उत्तरी राज्यों पंजाब एवं हरियाणा के मैदानों में भरपूर मात्रा में गेहूं की पैदावार होती है। उत्तर-पश्चिमी भारत के मुख्य गेहूं उत्पादक राज्यों में पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश शामिल है। पंजाब व हरियाणा की औसत उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से लगभग 30-40 प्रतिशत अधिक है, लेकिन हासिल की और संभावित उपज के बीच बड़ा अंतर है। समय पर बुवाई 25 अक्तूबर से 20 नवम्बर तक की जाती है, कुछ किसान ऐसे भी होते हैं, जो गन्ने की फसल, कपास के बाद या फिर आलू की फसल के बाद गेहूं की बुवाई करना चाहते हैं। वो देरी से गेहूं की बुवाई करते हैं। देर से गेहूं की बुवाई करने के लिए किसानों को कुछ खास किस्मों का चयन करना चाहिए, जैसे कि वो जल्दी पकने वाली (120-125 दिनों), दाना भरने की अवस्था में उनमें ताप सहने की क्षमता होनी चाहिए। डब्ल्यू.एच.-1124, डब्ल्यू.एच.-1024, एच.डी.-359, एच.डी.-3271, पी.बी.डब्ल्यू.-771, पी.बी.डब्ल्यू.-752, पी.बी.डब्ल्यू.-757, एच.डी.-3298 और एच.आई.-1621 पिछेती किस्मों का चयन करना चाहिए।

कनकी

पोआ

जंगली जई

लोमड़ घास

नई किस्मों, खाद व पानी का समुचित प्रयोग करने से गेहूं की पैदावार प्रति एकड़ तो बड़ी है, परन्तु इसके साथ-साथ खरपतवारों की समस्या भी बढ़ गई है। सामान्यत: खरपतवार फसलों को प्राप्त होने वाली 47 प्रतिशत नाइट्रोजन, 42 प्रतिशत फास्फोरस, 50 प्रतिशत पोटाश तक का उपयोग कर लेते हैं। गेहूं में उपज में कमी के घटकों में से खरपतवार एक प्रमुख कारण हैं और अगर गेहूं की फसल में खरपतवार नियंत्रण ना किया जाए, तो पैदावार में 25 से 75 प्रतिशत तक गिरावट आ सकती है। धान-गेहूं फसल-चक्र वाले इलाकों में गुल्ली-डंडा (कनकी/बलूरी) की एक बहुत बड़ी समस्या बन गया है। इसके इलावा इन इलाकों में लोम्बडा घास, पोआ घास, पितपापड़ा, जंगली पालक व मालवा की समस्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। जहां पर गेहूं की काश्त कपास, बाजरा, ग्वार व ज्वार के बाद की जाती है, वहां पर जंगली जई/काली जई, बाथू/बथुआ, खड़बाथू, गुल्ली डंडा, हिरनखुरी, मेथा, गजरी, प्याजी व कंटीली पालक खरपतवार पाए जाते हैं।

गेहूं के मुख्य खरपतवार : घास जाति के खरपतवारों में गुल्ली डंडा (कनकी/बलूरी), जंगली/काली जई, लोम्बड घास, पोआ और लालू घास आदि खरपतवार शामिल हैं।

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों में बाथू, खरबाथू, जंगली पालक, कंटीली पालक, मालवा, पीतपापड़ा, मैणा, सेंजी/मेथा, गजरी, मटरी, कृष्ण-नील, चटरी, कंडाई/रासा, जंगली धनिया, प्याज़ी, हिरनखुरी, जंगली सरसों आदि खरपतवार शामिल हैं।

निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को नष्ट करने का तरीका सदियों पुराना है व आज भी कारगर है। निराई-गुड़ाई से ना केवल खरपतवारों का नियंत्रण होता है, बल्कि पौधों की जड़ों को हवा भी मिलती है व खेत में नमी का संरक्षण होता है, जो अधिक पैदावार में सहायक है। लेकिन निराई-गुड़ाई हर जगह सम्भव नहीं है, ऐसी अवस्था में खरपतवारनाशियों का प्रयोग कर खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। खरपतवारनाशियों की उचित मात्रा, समय पर उपचार / छिड़काव, उचित 'नौजल', छिड़काव के लिए पानी की मात्रा व विधि अपना कर खरपतवारों को आसानी से नष्ट किया जा सकता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशी छिड़कने हेतु हमेशा फ्लैट-फैन नोज़ल या फ्लड-जेट नोज़ल का इस्तेमाल करें।

तालिका-1 : गेहूं की नसल में प्रयुक्त खरपतवारनाशियों के प्रयोग की मात्रा एवं छिड़काव का समय

खरपतवारनाशी	प्रयोग का समय	मात्रा (मि.ली. या ग्रा. प्रति एकड़)
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए		
2,4-डी	बुवाई के 30-35 दिन बाद	250-500
एलग्रिप (मैटसल्फ्यूरोन)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	8
एफीनीटी**** (कारफैंट्राजोन)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	20
ऐलीएक्सप्रेस/लेनफिडा (कारफैंट्राजोन+मैटसल्फ्यूरोन का तैयार मिश्रण)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	20
संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए		
आइसोप्रोटयूरोन*	बुवाई के 30-35 दिन बाद	500
टोपीक व अन्य*	बुवाई के 30-35 दिन बाद	160
प्यूमा पॉवर*	बुवाई के 30-35 दिन बाद	400
एक्सियल	बुवाई के 30-35 दिन बाद	400
लीडर, सफल व एस.एफ.-10** (सल्फोसल्फुरोन)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	13.5
दोनों प्रकार की खरपतवारों के लिए		
एटलांटिस**	बुवाई के 30-35 दिन बाद	160
टोटल** (सल्फोसल्फुरोन + मैटसल्फ्यूरोन का तैयार मिश्रण)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	16
अकोर्ड प्लस**	बुवाई के 30-35 दिन बाद	500
वेस्ता (क्लोडीनाफोप + मैटसल्फ्यूरोन का तैयार मिश्रण)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	160
ए सी एम-9 (क्लोडीनाफोप + मैट्रीब्यूजिन का तैयार मिश्रण)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	240
शगुन (क्लोडीनाफोप + मैट्रीब्यूजिन का तैयार मिश्रण)	बुवाई के 30-35 दिन बाद	200
एक्सियल + एलग्रिप	बुवाई के 30-35 दिन बाद	400+8
एक्सियल + एफीनीटी****	बुवाई के 30-35 दिन बाद	400+20
एक्सियल + 2, 4-डी	बुवाई के 30-35 दिन बाद	400+500
आइसोप्रोटयुरान + 2,4-डी	बुवाई के 30-35 दिन बाद	500+500
स्टॉम्प	बुवाई के तुरन्त बाद	2000
अवकीरा (पैरोक्सासुल्फोन 85 प्रतिशत)	बुवाई के तुरन्त बाद	60
अवकीरा (पैरोक्सासुल्फोन 85 प्रतिशत) + स्टॉम्प	बुवाई के तुरन्त बाद	60

* जहां कनकी में रोधकता आ चुकी है, वहां इन खरपतवारनाशियों का प्रयोग न करें।
** इन खरपतवारनाशियों के छिड़काव के 150 दिन तक गेहूं के बाद ज्वार, मक्का, बाजरा वाली फसलें न बीजें।
*** गेहूं की कुछ किस्में अकोर्ड प्लस के प्रति संवेदनशील हैं व गेहूं को कुछ नुकसान पहुंचा सकती हैं। यद्यपि छिड़काव के 1 महीने बाद नुकसान कम हो जाता है। लेकिन सावधानी अवश्य बरतें।
**** एफीनीटी से गेहूं व जौ के पत्तों पर गोल धब्बे बन जाते हैं, लेकिन 3-4 सप्ताह बाद ये खत्म हो जाते हैं व फसल की पैदावार पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

घास जाति के खरपतवार, विशेष रूप से कनकी, सबसे अधिक परेशानी वाले खरपतवार है, जिसका मुख्य कारण सिफारिश किए गए खरपतवारनाशी जैसे आइसोप्रोटेयुरॉन, टोपिक, प्यूमा पॉवर, लीडर, एटलांटिस, एक्सियल के लिए प्रतिरोध और देर से अकॉर्ड प्लस के छिड़काव के कम प्रभावकारिता की वजह है। अकॉर्ड प्लस भी कुछ गेहूं की किस्मों के लिए विषाक्तता पैदा कर सकता है। कनकी की कुछ आबादी एक से अधिक खरपतवारनाशियों के लिए प्रतिरोधी है, जोकि उसके प्रबंधन के लिए वैकल्पिक खरपतवार- नाशियों के चुनाव को सीमित करता है। इन परिस्थितियों में कुछ किसान 2-3 बार खरपतवारनाशियों का छिड़काव कर रहे हैं या दो खरपतवारनाशियों के मिश्रण या एक खरपतवारनाशी सिंचाई से पहले और एक खरपतवारनाशी बुवाई के 30-40 दिनों के बाद छिड़काव कर रहे हैं और अभी भी प्रतिरोधी कनकी को नियंत्रित करने में सक्षम नहीं हैं।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के सस्य विज्ञान विभाग द्वारा कनकी की प्रतिरोधी आबादी को नियंत्रित करने के लिए नई सिफारिश दी गई है, जिससे खरपतवारों के उगने से पूर्व के व बाद के खरपतवारनाशियों अनुक्रमिक उपयोग शामिल है।

क्रमश:

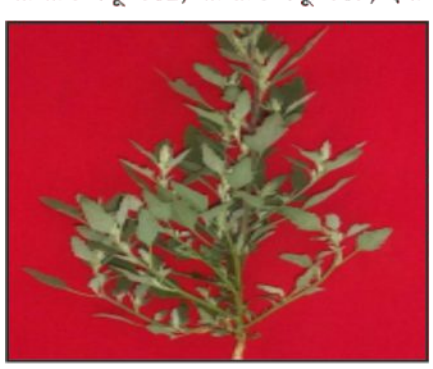
बाथू

कृष्ण नील

जंगली पालक

हिरण खुरी

खेती दुनिया

KHETI DUNIYAN

मुख्य कार्यालय

के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, नजदीक शेरे पंजाब मार्केट, पटियाला - 147001 (पंजाब)

फोन : 0175-2214575
मो. 90410-14575

E-mail : kdpublications@yahoo.co.in

वर्ष : 07 अंक : 48
तिथि : 02-12-2023

सम्पादक
जगप्रीत सिंह

मुख्य शाखाएं

पटियाला
फोन : 0175-2214575
मो. 90410-14575

मुम्बई

दिल्ली

लुधियाना

बण्ठिडा

सम्पादकीय बोर्ड

डॉ. डी.डी. नारंग
डॉ. जे.एस. डाल
डॉ. आर.एम. फुलझेले

कम्पोजिंग
एक्ता कम्प्यूटरज़ पटियाला

Editor, Printer & Publisher **JAGPREET SINGH**
Printed at **Vargenia Printers**, Sher-e-Punjab Market, Gaushala Road, PATIALA &
Published at Patiala for Prop. **JAGPREET SINGH**

पहाड़ पर भारी न पड़ जाए विकास का मॉडल

यदि नीति आयोग के विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा तीन साल पहले तैयार जल संरक्षण पर रिपोर्ट पर भरोसा करें तो हिमालय से निकलने वाली 60 फीसदी जल धाराओं में दिनों-दिन पानी की मात्रा कम हो रही है। ग्लोबल वार्मिंग, कार्बन उत्सर्जन, जलवायु परिवर्तन और इसके दुष्परिणाम धरती के शीतलीकरण का काम कर रहे ग्लेशियरों पर आ रहे संकट व उसके कारण समूची धरती के अस्तित्व के खतरे की बातें अब हकीकत बनती नजर आ रही हैं।

उत्तराखंड में यमुनोत्री तक निर्माणाधीन सड़क की सिलक्यारा सुरंग में फंसे लोगों के बाहर निकलने के दिन बढ़ते जा रहे हैं। पहाड़ के साथ की गई छेड़छाड़ का ही परिणाम है कि जिस अमेरिकी मशीन 'औगर' को पराक्रमी कहा जा रहा था, लक्ष्य से 12 किलोमीटर दूर इस तरह टूटी कि उसे टुकड़े-टुकड़े कर निकालना पड़ रहा है। लोगों को सुरक्षित निकालने के लिए जहां भी पहाड़ को छेदा जाता है, वहां मिल रही असफलता बताती है कि इंसान के विज्ञान-तकनीक ज्ञान की तुलना में दुनिया का सबसे युवा पहाड़ हिमालय बहुत विशाल है।

पहाड़ केवल पत्थर के ढेर नहीं होते, वे इलाके के जंगल, जल और वायु की दशा और दिशा तय करने के साध्य होते हैं। यदि धरती पर जीवन के लिए वृक्ष अनिवार्य हैं तो वृक्ष के लिए पहाड़ का अस्तित्व बेहद जरूरी है। ग्लोबल वार्मिंग व जलवायु परिवर्तन की विश्वव्यापी समस्या का जन्म भी पहाड़ों से जंगल उजाड़ दिए जाने से ही हुआ है। पर्वतीय राज्यों में बेहिसाब पर्यटन ने प्रकृति का हिसाब गड़बड़ाया तो गांव-कस्बों में विकास के नाम पर आए वाहनों के लिए चौड़ी सड़कों के निर्माण के लिए जमीन जुटाने-कंक्रीट उगाहने के लिए पहाड़ निशाना बने।

यदि नीति आयोग के विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा तीन साल पहले तैयार जल संरक्षण पर रिपोर्ट पर भरोसा करें तो हिमालय से निकलने वाली 60 फीसदी जल धाराओं में दिनों-दिन पानी की मात्रा कम हो रही है। ग्लोबल वार्मिंग, कार्बन उत्सर्जन, जलवायु परिवर्तन और इसके दुष्परिणाम धरती के शीतलीकरण का काम कर रहे ग्लेशियरों पर आ रहे संकट व उसके कारण समूची धरती के अस्तित्व के खतरे की बातें अब हकीकत बनती नजर आ रही हैं। ऐसे दावों के दूसरे पहलू भी सामने आने लगे कि जल्द ही हिमालय के हिमनद पिघल जाएंगे, जिससे नदियों में पानी बढ़ेगा। एक तरफ कई नगर-गांव जलमग्न हो जाएंगे, वहीं धरती के बढ़ते तापमान को थामने वाली छतरी के नष्ट होने से सूखा, बाढ़ व गर्मी पड़ेगी।

तीन साल पहले 31 विकास परियोजनाओं के लिए 185 एकड़ घने जंगलों को उजाड़ने की अनुमति देने का काम जरूर होता रहा। सात अप्रैल, 2020 को राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड की स्थाई समिति की बैठक में सारी आपत्तियों को दरकिनार करते हुए घने जंगलों को उजाड़ने की अनुमति दी गई। समिति ने पर्यावरणीय ष्टि से संवेदनशील 2933 एकड़ के भू-उपयोग परिवर्तन के साथ-साथ 10 किलोमीटर संरक्षित क्षेत्र की जमीन को भी कथित विकास के लिए सौंपने पर सहमति दी। इस श्रेणी में प्रमुख प्रस्ताव उत्तराखंड के देहरादून और टिहरी गढ़वाल जिलों में लखवार बहुउद्देशीय परियोजना (300 मेगावाट) का निर्माण और चालू है। परियोजना बिनोग वन्यजीव अभयारण्य की सीमा से 3.10 किमी दूर स्थित है और अभयारण्य के डिफॉल्ट ईएसजेड में गुजरती है। परियोजना के लिए 768.155 हैक्टेयर वन भूमि और 105.422 हैक्टेयर निजी भूमि की आवश्यकता होगी। परियोजनाओं को दी गई पर्यावरणीय मंजूरी को पिछले साल नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने निलंबित कर दिया था। इसके बावजूद परियोजना पर राष्ट्रीय बोर्ड द्वारा विचार किया जा रहा हे।

हिमालय के पर्यावरणीय छेड़छाड़ से उपजी सन् 2013 की केदारनाथ त्रासदी को भुलाकर उसकी हरियाली

उजाड़ने की कई परियोजनाएं उत्तराखंड राज्य के भविष्य के लिए खतरा बनी हुई हैं। गत नवंबर, 2019 में राज्य की कैबिनेट से स्वीकृत नियमों के मुताबिक कम से कम दस हैक्टेयर में फैली हरियाली को ही जंगल कहा जाएगा। यही नहीं, वहां न्यूनतम पेड़ों की सघनता घनत्व 60 प्रतिशत से कम न हो और जिसमें 75 प्रतिशत स्थानीय वृक्ष प्रजातियां उगी हों। जाहिर है कि जंगल की परिभाषा में बदलाव का असल उद्देश्य ऐसे कई इलाकों को जंगल की श्रेणी से हटाना है जो कि कथित विकास के राह में रोड़े बने हुए हैं। उत्तराखंड में बन रही पक्की सड़कों के लिए 356 किलोमीटर के वन क्षेत्र में कथित रूप से 25 हजार पेड़ काट डाले गए। यही नहीं, सड़कों का संजाल पर्यावरणीय लिहाज से संवेदनशील उत्तरकाशी की भागीरथी घाटी से भी गुजर रहा है। उत्तराखंड के चार प्रमुख धामों को जोड़ने वाली सड़क परियोजना में 15 बड़े पुल, 101 छोटे पुल, 3596 पुलिया, 12 बाईपास सड़कें बनाने का काम चल रहा है। ऋषिकेश से कर्णप्रयाग तक रेलमार्ग परियोजना भी स्वीकृत हो चुकी है। जिससे जंगल-वन्य जीव प्रभावित होंगे।

सनद रहे हिमालय पहाड़ न केवल हर साल बढ़ रहा है, बल्कि इसमें भूगर्भीय उठापटक चलती रहती है। यहां पेड़ भूमि को बांध कर रखने में बड़ी भूमिका निभाते हैं, जो कि कटाव व पहाड़ ढहने से रोकने का एकमात्र उपाय है। वहीं अंधाधुंध विकास भूकंप की चुनौती भी बढ़ाता है। हमें देश के 'जल-प्राण' हिमालय के अध्ययन व नियमित आकलन की जरूरत है।

पंकज चतुर्वेदी

टिकाऊ खेती के लिए टिकाऊ प्रौद्योगिकी एवं माटी न हो बीमार

राकेश तिवारी,
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

यह सत्य है कि जनसंख्या में वृद्धि के कारण भूमि पर लगातार दबाव बढ़ रहा है, जिससे मिट्टियों का तीव्र गति से दोहन या शोषण हो रहा है। इतना ही नहीं, मिट्टी को "रद्दी की टोकरी" समझ कर उस पर सभी प्रकार का कूड़ा-करकट, मलबा, मल-जल और औद्योगिक अपशिष्ट फेंका या बहाया जा रहा है। स्मरण रहे जड़ दिखने वाली मृदा चेतन या सजीव है। इसमें अपार ऊर्जा निहित हैं। फलतः इसमें अनगिनत प्रकार के सूक्ष्मजीव शरण पा रहे है, ये सूक्ष्म जीव उर्वरता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ये मृदा को स्वस्थ्य बनाए रखते है।

पृथ्वी की ऊपरी सतह मृदा अथवा भूमि या मिट्टी के नाम से जानी जाती है। यह मृदा शैलों के अपक्षय से निर्मित होकर विकसित हुई है। कालचक्र के साथ शैलों के अपक्षय से प्राप्त मृदा पदार्थ का संस्तरीकरण होता रहा है और यह संस्तरीकरण ही मृदा विकास का परिचायक है। आदर्श मृदा में तीन संस्तर-ए, बी तथा सी पाये जाते है, किंतु इन संस्तरों की मोटाई में काफी भिन्नता रहती है। मृदा का सबसे ऊपरी संस्तर ए कहलाता है जिस पर खेती की जाती है अतः यह मृदा का सबसे महत्वपूर्ण संस्तर है। इस संस्तर के बनने में हजारों वर्ष का समय लग जाता है, किंतु भूमिक्षरण के फलस्वरूप यह संस्तर देखते ही देखते विनष्ट हो जाता है। कहना चाहें तो कह सकते है कि मृदा का जन्म पेड़-पौधों तथा सूक्ष्मजीवों के साथ ही मनुष्यों को जीवन-प्रदान करने या उन्हें शरण देने के लिए हुआ है। प्रकृति ने मृदा के जन्म के समय ही उसमें नपी-तुली मात्रा में तत्वों का जो भंडार भेंट किया था। उसी से वह सतर्क गृहिणी की तरह काम चलाती आई हैं। वह चाहे तो इन तत्वों को देने से मुकर जाए। तब किसान उसे बंजर या बंध्य समझकर छोड़ देगा। ऐसा अक्सर होता भी है।

मृदा या मिट्टी का जो सम्मान है वह उस जीवनदायिनी शक्ति के कारण है, जिसे उर्वरता कहते है। यह गुण उसे विरासत में मिला है। इसी से फसलें उगती है। किसी राष्ट्र की थाती उसका मृदा-उर्वरता ही है।

नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाशियम-ये तीन तत्व पौधों के लिए अत्यावश्यक है। इनके अतिरिक्त कैलिशयम, मैग्नीशियम तथा गंधक की प्रचुर मात्राएं पौधों के लिए आवश्यक है। यही नहीं, कुछ अन्य तत्व भी हैं, जिनकी अत्यल्प मात्राएं पौधों द्वारा ग्रहण हो जाती है। ये है लोहा, तांबा, जिंक, मैग्जीन, बोरोन और मोल्बिडेनम।

इन सारे तत्वों के अतिरिक्त मृदा में कार्बनिक पदार्थ (हयूमस) भी रहता है जो सारे तत्वों को अपने में बांधे रहता है। यह पेड़-पौधों की पत्तियों, जड़ों, फसलों के अवशेषों, गोबर, मल मूत्र के द्वारा मृदा को मिलता है। जब मृदा में से इन सारे अवयवों का अधिक मात्रा में दोहन कर लिया जाता है तो वह अनुर्वर बन जाती है। अनुर्वर बनने के लिए अन्य कारण भी होते हैं- जैसे मृदा में बड़ी मात्रा में लवणों का संचित होना, अम्लीयता या क्षारीयता उत्पन्न होना जलमग्नता और मृदा के ऊपर अवांछित पदार्थों का बड़े पैमाने पर संचय।

मिट्टी का स्वास्थ्यः मृदा की स्वस्थता की पहचान यह है कि उसके सारे कार्यकलाप सुचारू रूप से सम्पन्न हों। उसमें यथेष्ट वायुसंचार हो, इसके लिए उसकी भौतिक दशा ठीक रहे, उसमें पर्याप्त नमी रहे जिससे पौधे पोषक तत्वों को ग्रहण कर सकें, किंतु शहरों के आसपास सड़कों के निकटवर्ती एवं उद्योग वाले क्षेत्रों, नदी के तटवर्ती इलाकों में मृदा के साथ जो अनाचार होता है, उससे मृदा को जो घुटन महसूस होती है, वह अकथनीय है। इसे ही मृदा प्रदुषण की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।

प्रदूषण का अर्थ पर्यावरण में किसी भी अवयव का आवश्यकता से अधिक मात्रा में एकत्र होना जिसके कारण सामान्य जीवन में अवरोध आये। प्रदूषण से मनुष्य, पशु, पक्षी तथा वनस्पति समान रूप से प्रभावित होते है। प्रदूषण से मृदा भी प्रदूषित होती है। अतः प्रदूषित मृदा वह है जिसमें कुछ अवयवों का अवांछनीय स्तर पाया जाए।

इस मृदा प्रदूषण के लिए जनसंख्या वृद्धि तथा औद्योगिक विकास इन दो प्रमुख कारकों को दोषी ठहराया जाता है। यह दोषारोपण निराधर नहीं है। औद्योगिक विकास के कारण दैनिक कामकाज में आने वाली वस्तुओं की संख्या और मात्रा में आशातीत वृद्धि हुई है। जनसंख्या बढ़ने से प्रति दिन घरों से निकलने वाले झाड़न-बुहारन, छिलके, कूड़ा-करकट आदि में भी काफी बढ़ोतरी हुई है। विशेषयता महानगरों में कूड़ा-करकट की यह मात्रा इतनी अधिक है, कि सही ढंग से इसका निटपान गंभीर समस्या उत्पन्न कर रहा है। इसके दो ही सरल उपाय समझ में आते है, या तो इसे जलस्रोत में फेंक दिया जाए या भूमि में बने गड्ढों में पाट दिया जाए। ऐसा कूड़ा-करकट घरेलू अपशिष्ट कहलाता है। इसमें रद्दी कागज, चीथड़े, चमड़े की पुरानी वस्तुएं, रबर की वस्तुए।, तराकरी तथा फलों के छीलन रहते है जो सड़ने-गलने वाली है किंतु साथ में धातु की टूटी-फूटी वस्तुएं, डिब्बे, कांच के टुकड़े, गारा, ईंट, राख भी मिली रहती है जो कूड़े के सड़ने-गलने के बाद भी मृदा पर बोझ स्वरूप पड़े रहे है। आजकल प्लास्टिक की पन्नियां, थैलियां, बाल्टियां एवं अन्य वस्तुएं भी कम समस्यामूलक नही है। अनुमान है कि प्रतिवर्ष हर व्यक्ति लगभग 10 किलोग्राम प्लास्टिक का उपयोग करके रद्दी में फेंकता है। इसे भी मृदा में ही शरण पानी रहती है। यह प्लास्टिक विघटनशील नहीं है। अतः मिट्टी के भीतर यह वायु तथा जल के संचरण में बाधा डालता है। इतना ही नहीं, मृदा पर कृषिजन्य अपशिष्ट भी मिलते रहते है जिनमें पुआल, डंठल के अलावा फसलों पर छिड़के गए कीटनाशी रसायन या मिट्टी में डाले गए गैमेक्सीन आदि सम्मिलित है। ये सभी मृदा प्रदूषण को बढ़ाने वाले है।

इनके अतिरिक्त मृदा-प्रदषण के अन्य स्त्रोतों में रासायनिक अपशिष्ट भी है। ये रासायनिक उद्योग की देन है। इनमें विभिन्न उर्वरक, दवाइयां जीवनाशी (पेस्टीसाइड्स) तथा धात्विक पदार्थ आते है। विभिन्न उद्योगों से निकलने वो बहिस्त्राव में न जाने कितने-कितने रासायनिक पदार्थ एवं कभी-कभी जैव पदार्थ भी मिले रहते है। अनुमान है कि हमारे देश में प्रतिवर्ष 5-10 लाख टन रासायनिक अपशिष्ट निकलता है। इसमें से कुछ अंश मृदा की गोद में समा जाता है। यह अपशिष्ट स्थायी रूप से बना रहता है और अत्यंत हानिकारक होता है। इसमें मैग्नीज, पारा, निकेल, आर्सेनिक, कॉपर, लैड, कैडमियम जैसी धातुओं के यौगिक रहते है और वह मिट्टी से फसलें तथा तरकारियों से होते हुए पशुओं तथा मनुष्यों में पहुंच कर अनेकानेक रोगों को जन्म देते हैं। इतना ही नहीं, मिट्टी में अवशेषित होकर ये धातुएं जलस्त्रोत को भी दूषित करती है। इसीलिए जो मृदाएं पहले स्वस्थ भोज्य वस्तुएं प्रदान करती थीं वे अब विषाक्त वस्तुएं प्रदान करती हैं। सचमुच बड़ी भयावह स्थिति है।

कूड़ा-करकट के अलावा बड़े शहरों की एक जटिल समस्या मलमूत्र तथा अवमल को ठिकाने लगाने की

शेष पृष्ठ 6 पर

शेष पृष्ठ 5 की

टिकाऊ खेती के लिए टिकाऊ प्रौद्योगिकी एवं माटी न हो बीमार

है। संप्रति भूमि के अलावा कोई अन्य ऐसा स्थान नहीं दिखता जहां इन्हें भंडारित किया जाए या प्रयुक्त किया जा सके। अत: यदि विपुल मात्रा में नित्य ही निकलने वाले मलमूत्र को मिट्टी में बिना विचारे लगातार मिलने दिया जाए तो भय है कि कालांतर में मृदा "रूग्ण" हो जायेगी, क्योंकि इस तरह से मृदा के सारे छिद्र (रंध्र) बंद हो जाएंगे, जिससे मिट्टी के भीतर पहले वायु

का और बाद में वर्षा जल का संचरण ठीक से नहीं हो पाएगा। यद्यपि हमारे देश में गंदे नालों के पानी तथा कच्चे मल का उपयोग सब्जियों की फसलें उगाने या वन नि:शुल्क उपलब्ध रहता है, किंतु इनके लगातार उपयोग करते रहने पर मिट्टी पर जो कुप्रभाव पड़ सकता है उसका क्रमबद्ध अध्ययन नहीं हुआ है। आस्ट्रेलिया में लगातार 70 वर्षों तक इस प्रकार मल जल का उपयोग करते रहने पर पाया गया कि मिट्टियों में कैडमियम, तांबा, निकेल, सीसा जैसी भारी धातुओं की मात्रा बढ़कर दूनी हो गई। यदि ऐसी मिट्टियों में तरकारियों या फसलें उगाई जाती है तो इन विषैली धातुओं की पर्याप्त मात्रा हरी पत्ती वाले शाकों में आ जाती है जिसका उपयोग करने से नाना प्रकार के रोग हो सकते है। कैडमियम की विषयाक्तता अति विख्यात है। जापान में इसमें इटाई-इटाई नामक भयंकर रोग फैलते देखा गया है। इससे मनुष्य में उच्च रक्त दाब उत्पन्न हो जाता है।

स्वस्थ्य मृदा जितनी सहजता से रूग्ण बनती है उतनी सहजता से रूग्ण मृदा स्वस्थ्य नहीं बन पाती। सामान्य उपायों में से कुछेक इस प्रकार हैं- मृदा मे जैव अंश बढ़ाना, मृदा का पी-एच संतुलित रखना तथा प्रदूषित मृदा में ऐसी फसलें उगाना जिनसे मिट्टी शुद्ध हो सके। इस समय एक नवीन प्रौद्योगिकी प्रचलन में आई है जिसे वर्मी कम्पोस्टिंग कहते है। इसको केंचुओं द्वारा कूड़े-करकट की वृहद मात्रा को अत्यल्प समय में विघटित कराकर उपयोगी जैव खाद वर्मी कम्पोस्ट तैयार की जाती है। यह प्रदूषण रहित प्रौद्योगिक किसानों द्वारा सहज ही ग्रहण की जा सकती है। शहरों के कूड़ा कचरे को काफी काल तक गड्ढ़ों में या खेतों में पड़े रहने देकर गंदगी तथा रोग को बढ़ावा देने की अपेक्षा श्रेयस्कर यही है कि इस नवीन प्रौद्योगिक का भरपूर उपयोग किया जाए और मृदा प्रदूषण को कम किया जाए।

जिन भूखण्डों में रासायनिक उद्योग कभी चालू थे, या जहां रासायनिक अपशिष्ट चोरी-छिपे गाड़े जाते रहे हैं- जहां की मृदा संदूषित हो चुकी है उसको सुधार पाना या उपयोग में ला पाना अत्यंत कष्टसाध्य या असंभव है। भविष्य में ऐसी भूमि पर न तो बस्ती बनाई जाए, न ही फसलें उगाई जाएं यही श्रेयस्कर होगा।

इधर कुछ अन्य कारणों से भी मृदा प्रदूषण की आशंका बढ़ी है। एक है अनियंत्रित खनन यानी खानों की खुदाई से निकला मलवा, जो उपजाऊ भूमि पर फैला दिये जाने से भूमि उर्वरता को नष्ट करता है। पहाड़ी क्षेत्रों तथा तलहटी में चूना पत्थर निकालने या बालू निकालने से ऐसा प्रदूषण होना सामान्य घटना है और दूसरा है रेडियो सक्रिय अपशिष्ट जो पोखरण जैसे परमाणु परीक्षणों, परमाणु विद्युत केन्द्रों, अस्पतालों, रेडियो सक्रिय समस्थानिकों, आयुध उद्योगों के आसपास की भूमि को प्रदूषित करते है। विश्व में नाभिकीय आयुधों की निरंतर वृद्धि के कारण विस्फोटों की संख्या बढ़ी है, जिनसे रेडियो साक्रिय पदार्थ निकलते है जो वायु के अलावा मिट्टी के अवयवों के साथ अंतर्विष्ट हो जाते है और वनस्पतियों के माध्यम से मानव शरीर में प्रविष्ट कर जाते है, जहां अनेक प्रकार के लाइलाज रोगों को जन्म देते है। उद्योगों के आसपास धूल और वायु में निलंबित महीन कण जब नीचे गिरते है तो नाना प्रकार की धातुओ की मिट्टी में निक्षेपित करते है।

जीवनाशियों (पेस्टीसाइडों) के अधिक प्रयोग से मिट्टी प्रदूषण बढ़ता है, जल के स्त्रोत प्रदूषित होते है। हमारे देश में कीटनाशियों तथा खरपतवारनाशियों की प्रचुर मात्राएं (1.5 लाख टन) कृषि में प्रयुक्त होती है- इनका बहुत बड़ा अंश मिट्टी में मिलता रहता है। यह मिट्टी में दीर्घकाल तक बने रह सकते हैं। यह जीवनाशी भी पशुओं तथा मनुष्यों के लिए अहितकर हैं।

स्पष्ट है कि आज नहीं तो कल, ग्रामीण किसान भी मृदा प्रदूषण की चपेट में आ जाएंगे। इसके लिए मृदा संरक्षण के पारंपरिक उपायों के साथ-साथ वर्मीकंपोस्टिंग जैसी प्रौद्योगिकों को अपनाने के लिए कृषकों को प्रेरित करने की आवश्यकता है।

कृषि योग्य क्षेत्रफल में ठहराव: भारत में आज 143 मिलियन (14.30 करोड़) हैक्टेयर क्षेत्रफल का 46 प्रतिशत बहुत अधिक है। विकासशील देशों में तुलना में यह प्रतिशत बहुत अधिक हैं। जनसंख्या में लगातार बढ़ोत्तरी, औद्योगीकरण और दूसरे विकास कार्यों के कारण कृषि क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी की अब ज्यादा गुंजाइश नहीं है।

सीमित जल संसाधन और और सिंचाई दक्षता का निम्न स्तर: भारत की 70 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि आज भी वर्षा के ऊपर निर्भर करती है। जल के सभी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करने पर भी 110-115 मिलियन (11-11.5 करोड़) हैक्टेयर क्षेत्रफल के लिए सिंचाई की व्यवस्था हो पायेगी। लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्र कृषि के लिए वर्षा पर निर्भर करेगा। सिंचाई के सीमित संसाधनों के साथ-साथ भारत की अधिकतर सिंचाई प्रणालियों की दक्षता 30 से 40 प्रतिशत है, अत: पानी के अधिकांश भाग का उचित उपयोग नहीं हो पाता है।

पर्यावरण संकट: प्रगति और विकास की दौड़ का पर्यावरण पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा है, जिससे हमारी कृषि व्यवस्था का आधार खिसकने लगा है। जंगलों की अत्यधिक कटाई से पर्यावरण काफी हद तक दूषित हो गया है। जीवाश्म ईंधन, तेल, कोयला तथा प्राकृतिक गैस के ऊर्जा के रूप में उपयोग से भी पर्यावरण संतुलन डगमगा रहा है।

भूमिगत जल स्तर से जुड़ी समस्याएं : सिंचित क्षेत्र में भौम जल स्तर में लगातार गिरावट के कारण ट्यूबवैल से सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई की समस्या आने वाले समय में विकट रूप ले सकती हैं। दूसरी और नहरी पानी के कुप्रबंध के कारण भूमिगत जल स्तर के ऊपर आने से कुप्रभावित भूमि में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। आज लगभग 14-20 मिलियन (1.40-2 करोड़) हैक्टेयर भूमि जलाक्रांत की समस्या से ग्रस्त है। भूमिगत जल में नाइट्रेड, लोहा, कैल्शियम, सोडियम, फलोराइड, आरसैनिक तथा लैड की बहुतायत होती जा रही है, जिसके फलस्वरूप पेयजल की समस्या बढ़ती जा रही है। इस तरह के विषाक्त जल के पीने से बहुत-सी बीमारियां भी उत्पन्न हो रही हैं।

मृदा ह्रास : जल अपरदन के कारण प्रति वर्ष 15-20 करोड़ टन मृदा का ह्रास होता है, जिसका मुख्य भाग सागरों में समा जाता है। इससे भूमि की उत्पादकता शक्ति में निरंतर गिरावट आ रही है।

क्षारीय और लवणीय भूमि में बढ़ोत्तरी: कृषि योग्य भूमि का अधिकांश भाग लवणों और क्षारों से प्रभावित है। एक अनुमान के अनुसार 10 मिलियन (1 करोड़) हैक्टेयर भूमि लवणों से ग्रस्त है और इस भूमि में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है और साथ ही साथ इसके ऊपर अच्छी फसल लेने की समस्या बढ़ रही है।

मृदा में कार्बनिक पदार्थ का ह्रास: हरित क्रांति के बाद कार्बनिक खादों के उपयोग में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है और साथ ही बार-बार जुताई और दूसरी क्रियाओं से कार्बनिक पदार्थ के टूटने की दर में भी वृद्धि हुई, जिससे मृदा के कार्बनिक अंश में लगातार कमी हो रही है। इस कमी के कारण मृदा के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों का ह्रास हुआ है और मृदा की उर्वरता और उत्पादकता में कमी आई है। इन कमियों के कारण कुल कारक उत्पादकता में लगातार कमी हो रही है, अत: ज्यादा उत्पादकता का ऊंचा स्तर बनाए रखने के लिए पहले की अपेक्षा मात्रा का प्रयोग करना पड़ रहा है।

प्राकृतिक उर्वरता में ऋणात्मक असंतुलन: मुख्य पोषक तत्वों का प्रति वर्ष लगभग 15 से 20 मिलियन (1.5-2.0) टन का उपयोग हो रहा है। इस उपयोग की तुलना में फसलों द्वारा, इनका अवशेषण 25 से 30 मिलियन (2.5-3.0 करोड़) टन है जिसके कारण हर वर्ष लगभग 10 मिलियन (1.0 करोड़) टन का ऋणात्मक असंतुलन पैदा हो रहा है। इसी तरह की ऋणात्मक असंतुलन की स्थिति गौण और सूक्ष्म तत्वों में भी है।

पोषक तत्वों का कम और असंतुलित उपयोग : प्राय: किसान स्थानीय सिफारिशों के विपरित, उर्वरक की न केवल कम मात्रा का उपयोग करता है, बल्कि पोषक तत्वों की मात्रा में सही संतुलन भी नहीं होता है। किसान ने फास्फोरस और पोटाश की तुलना में नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग किया है। इस असंतुलित उपयोग से पोषक तत्वों की दक्षता में कमी आई है। संघन कृषि प्रणालियों वाले क्षेत्र में गौण और सूक्ष्म तत्वों की कमी भी 21वीं सदी के लिए एक गंभीर समस्या है।

मुख्य फसल प्रणालियों के टिकाऊपन पर प्रश्न चिन्ह: धन-गेहू फसल चक्र, जिसके अंतर्गत 15 मिलियन (1.5 करोड़) हैक्टेयर क्षेत्र आता है, कि उत्पादकता में ठहराव आ गया है। समय के साथ धान की वार्षिक उत्पादन दर में भी कमी दर्ज की गई है। "आलू-गेहूं" फसल चक्र भी उन फसल चक्रों में से एक है जो उत्पादकता के लिए प्रश्न चिन्ह

बन गए हैं।

कीटों, बीमारियों और खरपतवारों के प्रकोप में बढ़ोत्तरी: फसल नाशीजीवों और खरपतवारें में रसायन प्रतिरोधक शक्ति के विकसित होने के कारण इनका प्रकोप बढ़ रहा है। आइसोप्रोटूरोन के लगातार प्रयोग से मंडूसी नामक खरपतवार के ऐसे बायोटाईप उभर कर आए है। जिनके ऊपर इस दवाई का कोई असर नहीं है। इसी तरह कपास नाशजीवों में भी प्रतिरोधक शक्ति का विकास हुआ है, जिसके कारण दवाई के प्रयोग के बाद भी नुकसान को रोकना कठिन हो गया है। इन परिस्थतियों से उदासीन होकर, कई स्थानों पर किसानों ने आत्महत्या तक कर ली है। समय के साथ कुछ विदेशी मुल के कीटों, बीमारियों और खरपतवारों का प्रकोप बढ़ रहा है।

भारतीय कृषि के कुछ सुखद पहलू : भारतीय कृषि आज जहां अनेक समस्याओं से घिरी है। वहां इसके कुछ सुखद पहलू भी है जिन का विवरण इस प्रकार है:

जलवायु, धरातल और पादप आनुवंशिक विविधता: जलवायु धरातल और पादप आनुवंशिक विविधता के कारण, भारत में अनेक प्रकार की फसलों और पेड़े पौधे पाए जाते है। एक ही फसल को पूरे वर्ष देश के एक या दूसरे भाग में पैदा किया जा सकता है। इन संसाधनों को फसल सुधार कार्यक्रमों प्रयोग करके उन्नत प्रजातियों का विकास किया जा सकता है। आज हमें यह देखना कि यह विविधता ज्यों की त्यों बनी रहे इसके लिए कारगर नीतियों को अपनाना होगा।

उत्पादकता में क्षेत्रीय असन्तुलन: विभिन्न फसलों से प्राप्त औसत उपज में बहुत अधिक क्षेत्रीय असन्तुलन है। पंजाब में धान की औसत उपज 32 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। जबकि बिहार और उड़ीसा में औसत उपज का स्तर 13 से 14 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। इस असन्तुलन का मुख्य कारण है उपलब्ध प्रौद्योगिकी के विस्तार और किसानों ढंग से विस्तार करके, उत्पादन के क्षेत्रीय असन्तुलन को खत्म करके, उत्पादन में काफी बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

उपलब्ध प्रौद्योगिकी में उत्पादन और उत्पादकता को दुगना करने की क्षमता: सभी फसलों की औसत उपज, शोध केन्द्रों पर प्राप्त उपज की तुलना में आधे से भी कम है। राष्ट्रीय स्तर पर किसानों के खेतों पर किए प्रदर्शनों से यह पाया गया है कि किसान अगर फसलानुसार उचित प्रौद्योगिकी का प्रयोग करें तो शोध केन्द्रों पर मिली उपज और औसत उपज के अन्तर को काफी कम किया जा सकता है अत: हमारी उपलब्ध प्रौद्योगिकी में दुगुना करने की क्षमता है।

उर्वरकों और रसायनों का सीमित उपयोग: विकसित देशों की तुलना में हमारे देश में उर्वरकों और रसायनों का उपयोग काफी कम है। अत: उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने के लिए इनके उपयोग में बढ़ोत्तरी की काफी गुंजाइश है।

जैविक खादों की प्रचुर मात्रा: जैविक खादों में पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा उपलब्ध है। पिछले कुछ वर्षों में जैविक खादों के उपयोग में कमी आई है, परन्तु इसका मुख्य कारण है, उपलब्ध जैविक खादों की प्रबंध व्यवस्था में कमी और किसानों में इनके महत्व के प्रति सही जानकारी न होना।

सस्ती और प्रचुर मात्रा में मजदूरी की उपलब्धि: देश की सकल श्रम शक्ति का 67 प्रतिशत कृषि उत्पादन में संलग्न है, अत: संघन खेती के लिए सस्ती और प्रचुर मात्रा में मजदूरी उपलब्ध है।

समस्याओं के निदान के लिए सस्य प्रौद्योगिकी: उपलब्ध उन्नत सस्य प्रौद्योगिकी, कृषि क्षेत्र की प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने में, अनुकूल परिस्थितियों का फायदा उठाने में तथा कृषि कारकों की उपयोग दक्षता बढ़ाने में पूरी तरह से सक्षम है। इसके अतिरिक्त, सस्य प्रौद्योगिकी पर्यावरण हितैषी, आर्थिक रूप से व्यवहारिक, सामाजिक रूप से उपयुक्त और तकनीकी रूप से सुदृढ़ है। अत: से 21वीं सदी की कृषि समस्याओं के निवारण के अनुरूप है। उपलब्ध सस्य प्रौद्योगिकी में पर्यावरण को बिना खतरे में डाले उत्पादकता और उत्पादक को दुगुना करने की क्षमता है। उन्नत सस्य प्रौद्योगिकी के कुछ पहलुओं का विवरण इस प्रकार है।

क्रमश:

पपीते की उन्नत प्रजातियों की वैज्ञानिक खेती

आर. एस. सेंगर व आलोक कुमार सिंह, कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ एवं डी.के. श्रीवास्तव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, लखनऊ

पपीते में उपलब्ध विटामिन 'ए' की मात्रा सारे फलों में आम के बाद दूसरे स्थान पर है। पपीते में विभिन्न प्रकार के पुष्पक्रम पाए जाते हैं। इसके पुष्पों को लिंग के आधार पर मुख्यत: नर, मादा व उभयलिंगी प्रकार में बांटा गया है। पपीते की उन्नत खेती करने के लिए अच्छे तथा स्वस्थ बीजों का प्रयोग बहुत ज़रुरी होता है।

भूमि एवं जलवायु : पपीते की सफल बागवानी हेतु गहरी और उपजाऊ, सामान्य पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मृदा अत्याधिक उपयुक्त मानी गई है। इसकी बागवानी के लिए भूमि में जल निकास का होना बहुत ज़रुरी है, क्योंकि यह जल भराव के प्रति काफी सुग्राह्य है। पपीता एक उष्ण कटिबंधीय फल है, किन्तु इसकी खेती बिहार की समशीतोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक की जा रही है। इसकी बागवानी समुंद्र तल से 1000 मीटर की ऊंचाई तक की जा सकती है। वायुमंडल का तापमान 10 डिग्री सैल्सियस से कम होने पर पपीते की वृद्धि, फलों का लगना तथा फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पपीते की अच्छी वृद्धि के लिए 22 डिग्री से 26 डिग्री सैल्सियस तापमान उपयुक्त पाया गया है। इसके लिए औसत वार्षिक वर्षा 1200-1500 मिलीमीटर पर्याप्त होती है। पकने के समय शुष्क एवं गर्म मौसम होने से पपीता के फलों की मिठास बढ़ जाती है।

पपीता की उन्नत प्रजातियां : पपीता एक परम्परागत फसल है तथा इसका व्यवसायिक प्रवर्धन बीज के द्वारा होने के कारण एक ही प्रजाति में बहुत अधिक भिन्नता पाई गई है। वर्तमान में भारत में पपीते की कई किस्में विभिन्न प्रदेशों में उगाई जा रही है। इनमें प्रमुख रूप से 20 उन्नत किस्में है तथा कुछ स्थानीय व विदेशी किस्में हैं। स्थानीय किस्मों में रांची, बारवानी तथा मधु बिन्दु प्रमुख हैं। विदेशी किस्मों में वाशिंगटन, सोलो, सनराइज सोलो एवं रेड लेडी प्रमुख हैं। पपीते की कुछ प्रमुख किस्मों की संक्षिप्त जानकारी इस लेख में दी जा रही है।

पूसा मैजेस्टी : इस प्रजाति में भी पूसा डेलिशियस की भांति मादा एवं उभयलिंगी पौधे निकलते हैं। यह 50 सैंटीमीटर की ऊंचाई से फल देता है तथा एक फल का वज़न 1.0-2.5 किलोग्राम तक होता है। पूसा मैजेस्टी पैदावार में उत्तम है तथा फल में पपेन की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसके फल अधिक टिकाऊ होते है तथा इनमें विषाणु रोगों का प्रकोप कम होता है। पकने पर गुदा ठोस एवं पीले रंग का होता है तथा कुल घुलनशील ठोस 9 से 10 ब्रिक्स तक होता है। इस किस्म के एक पेड़ से 40 किलोग्राम तक फल प्राप्त होता है। इसके गुदे की मोटाई 3.5 सैंटीमीटर होती है। यह प्रजाति सूत्रकृमि अवरोधी भी है।

पूसा डेलिशियस : यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसमें मादा और उभयलिंगी पौधे निकलते है तथा उभयलिंगी पौधे भी फल देते हैं। पूसा डेलिशियस 80 सैंटीमीटर की ऊंचाई तक बढ़ने पर फल देता है। इसके फल अत्यंत स्वादिष्ट एवं सुगंधित होते हैं। फलों का आकार मध्यम से लेकर साधारण बड़ा तक होता है। इनका वज़न 1-2 किलोग्राम तक होता है। इनका वज़न 1-2 किलोग्राम तक होता है। पकने पर फलों के गुदे का रंग गहरा हो जाता है तथा गुदा ठोस होता है। गुदे की मोटाई 4 सैंटीमीटर तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 डिग्री से 13 डिग्री ब्रिक्स होती है। फलों की पैदावार 45 किलोग्राम प्रति पेड़ होती है।

पूसा ड्वार्फ : यह एक डायोसियस प्रजाति है और इसमें नर एवं मादा पौधे निकलते हैं। इस किस्म के पौधे बौने होते हैं। इसमें फलन ज़मीन से 40 सैंटीमीटर की ऊंचाई पर होता है तथा एक फल का वज़न 0.5 से 1.5 किलोग्राम तक होता है। इसकी पैदावार 40-50 किलोग्राम प्रति पेड़ है। फल के पकने पर गुदे का रंग पीला होता है। गुदे की मोटाई 3.5 सैंटीमीटर होती है तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 ब्रिक्स होती है। पौधा बौना होने के कारण इसे आंधी या तूफान से कम नुकसान होता है।

पूसा जायंट : यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। इस किस्म के पौधे विशालकाय होते है, जिनमें फलन ज़मीन से 80 सैंटीमीटर की ऊंचाई पर होता है। पूसा जायंट के फल बड़े होते हैं तथा एक फल का वज़न 1.5 से 3.5 किलोग्राम तक होता है। इसके गुदे का रंग पीला तथा मोटाई 5 सैंटीमीटर होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 7 ब्रिक्स होती है। प्रति पेड़ औसत उपज 30-35 किलोग्राम तक होती है। यह किस्म पेठा और सब्ज़ी बनाने के लिए काफी उपयुक्त है।

पूसा नन्हा : यह पपीते की सबसे बौनी प्रजाति है, जो गामा किरणों द्वारा विकसित की गई है। पूसा नन्हा भी एक डायोसियस प्रजाति है। यह 30 सैंटीमीटर की ऊंचाई से फलना प्रारंभ करता है। इसमें प्रति पेड़ 25 किलोग्राम तक फल प्राप्त होता है। इसके गुदे का रंग पीला तथा मोटाई 3 सैंटीमीटर होती है। पूसा नन्हा में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति संघन बागवानी तथा गृह वाटिका के लिए काफी उपयुक्त पाई गई है।

कुर्ग हनीड्यू : यह किस्म भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरू के केन्द्रीय बागवानी प्रयोग केन्द्र, चेट्टाली द्वारा चयनित किस्म है। इसका चयन हनीड्यू नामक प्रजाति से किया गया है। यह एक गायानोडायोसियस प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम आकार के होते है। कुर्ग हनीड्यू के फल लम्बे, अंडाकार आकार एवं मोटे गुदेदार होते हैं। इसके फलों का वज़न 1.5 से 2.0 किलोग्राम तक होता है। गुदे का रंग पीला होता है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौधा औसत उपज 70 किलोग्राम तक होती है।

सूर्या : यह सनराइज सोलो एवं पिंक फ्लैश स्वीट के संकरण द्वारा विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके फल मध्यम आकार के होते है और इनका औसत वज़न 600-800 ग्राम तक होता है तथा बीज की कैविटी कम होती है। फलों का गुदा गहरे लाल रंग का होता है। इसकी मोटाई 3-3.5 सैंटीमीटर तथा कुल घुलनशील ठोस मात्रा 13.5-15.0 ब्रिक्स होती है। फल की भंडारण क्षमता भी अच्छी है। प्रति पौधा औसत उपज 55-65 किलोग्राम तक होती है।

को-1 : यह प्रजाति 1972 में रांची प्रजाति से चयनित की गई है। यह एक डायोसियस किस्म है और इसके पौधे छोटे होते हैं। इसके फल मध्यम आकार के गोल होते हैं तथा गुदा पीले रंग का होता है। फलों में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 120 ब्रिक्स तक होती हे। प्रति पौधा औसत उपज 40 किलोग्राम तक होती है।

को-2 : इस किस्म का चयन 1979 में स्थानीय किस्म से किया गया है। इसमें पपेन प्रचुर मात्रा (4 से 6 ग्राम प्रति फल) में पाई जाती है। इसके फलों का औसत वज़न 1.5 से 2.0 किलोग्राम तक होता है। फलों में 75 प्रतिशत गुदा होता है और इसकी मोटाई 3.8 सैंटीमीटर तथा रंग नारंगी होता है। फलों का आकार बड़ा होता है, जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 11.4 से 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौधा औसत उपज 80-90 फल प्रति वर्ष होती है। पपेन की औसत उपज 250 से 300 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर होती है।

को-3 : यह को-2 एवं सनराइज सोलो के संकरण द्वारा वर्ष 1983 में विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। यह ताज़े फल के रूप में खाने हेतु सर्वोत्तम किस्म है। इसके फल मध्यम आकार के होते है, जिनका औसत वज़न 500 से 800 ग्राम तक होता है। फल में गुदे का रंग लाल होता है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 14.6 ब्रिक्स तक होती है। प्रति पौधा औसत उपज 90 से 120 फल होती है।

को-4 : यह किस्म वर्ष 1983 में को-1 एवं वाशिंगटन के संकरण से विकसित की गई है। इसके पौधे के तने तथा पत्तियों के डंठल का रंग बैंगनी होता है। फल मध्यम आकार का होता है और औसत वज़न 1.2 से 1.5 किलोग्राम तक होता है। फल में गुदे का रंग पीला होता है और कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.2 डिग्री ब्रिक्स होती है। औसत उपज 80 से 90 फल प्रति पौधा होती है।

को-5 : इस प्रजाति का चयन वर्ष 1985 में वाशिंगटन प्रजाति से किया गया है। यह पपेन उत्पादन हेतु सर्वोत्तम पाई गई है। इसमें प्रति फल 14.45 ग्राम शुष्क पपेन पाया जाता है। पत्तियों के डंठल का रंग गुलाबी होता है। फलों का औसत वज़न 1.5 से 2.0 किलोग्राम तक होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13 डिग्री ब्रिक्स होती है। दो वर्ष के फसल-चक्र में औसत उपज 75-80 फल प्रति पौधा होती है। शुष्क पपेन की औसत उपज 1500-1600 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर होती है, जिसमें 72 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है।

को-6 : इस प्रजाति का चयन वर्ष 1986 में पूसा जायंट प्रजाति से किया गया है। यह पपेन उत्पादन तथा ताज़ा खाने के लिए उपयोगी पाई गई है। इसके पौधे छोटे होते है तथा फलों की तुड़ाई पौध रोपण के आठवें माह से शुरू हो जाती है। इसके फलों का औसत वज़न 2 किलोग्राम तक होता है। फलों के गुदे का रंग पीला होता है और कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.60 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पौधा औसत उपज 80-100 फल है। प्रति फल शुष्क पपेन की मात्रा 7.5 से 8.0 ग्राम तक होती है।

को-7 : यह पूसा डेलिशियस, को-3, सी.पी.-75 एवं कुर्ग हनीड्यू के बहुसंकरण द्वारा वर्ष 1997 में विकसित संकर किस्म है। को-7 एक गायनोडायोसियस प्रजाति है, जिसमें फल ज़मीन से 52.2 सैंटीमीटर की ऊंचाई पर लगते है। इसके फल लम्बे, अंडाकार होते है और गुदे का रंग लाल होता है। फलों में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 16.7 डिग्री ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति 112.7 फल प्रति पौध उपज देती है, जोकि 340.9 टन प्रति हैक्टेयर है।

रांची : यह प्रजाति झारखंड की राजधानी रांची के आस-पास छोटानागपुर क्षेत्र में पाई जाती है। इसमें नर, मादा तथा उभयलिंगी तीनों प्रकार के पौधे मिलते हैं। इसके फल काफी बड़े होते है तथा उभयलिंगी फल का वज़न 15 किलोग्राम तक पाया गया है। मादा पेड़ से एक फल का वज़न 5 से 8 किलोग्राम तक पाया जाता है, जो दूर से देखने पर कद्दू जैसा दिखाई देता है। इसका बीज बाहर कहीं भी ले जाकर बोने से फल का वज़न घट जाता है।

नर्सरी प्रबंधन : पपीते की खेती के लिए पौध तैयार करना ही महत्वपूर्ण कार्य है। खेत में पौधों को 1.8×1.8 मीटर की दूरी पर लगाना हो तो एक हैक्टेयर में रोपण हेतु 250 से 300 ग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीज बोने के लिए 6×8 इंच आकार के पॉलीथीन बैग प्रयोग में लाए जाते हैं। बीजों का उपचार कवकनाशी से करना चाहिए तथा बीजों को 1.0 सैंटीमीटर की गहराई पर पॉलीथीन की थैलियों में बीचों-बीच बोना चाहिए तथा बाद में स्वस्थ पौधों को छोड़ कर शेष पौधों को निकाल देना चाहिए। बीज बोने के बाद उनकी समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। पौध 20 से 25 सैंटीमीटर की हो जाने पर रोपण कर देना चाहिए। बीजों को थैलियों में बोने से पहले 200 पी.पी.एम. जिब्रेलिक से उपचारित करने के बाद बोने से जमाव की दर बढ़ जाती है तथा पौधों की ऊंचाई में वृद्धि होती है।

प्रवर्धन : पपीते का प्रवर्धन मुख्य रूप से बीज द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा तैयार पौधे कम समय में जल्दी पैदावार देने लगते है। इसमें ऐसे बीज का चुनाव करना चाहिए, जोकि स्वस्थ तथा ओजस्वी हों। इसे किसी शोध संस्थान या प्रमाणित बीज भंडार से क्रय करना चाहिए।

बीज की मात्रा : 300-500 ग्राम प्रति हैक्टेयर।

पौध तैयार करने का समय : साधारणत: पपीते का बीज नर्सरी में रोपने की निर्धारित तिथि से दो महीने पहले बोना चाहिए। इस प्रकार पौधे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के समय करीब 15-20 सैंटीमीटर की ऊंचाई के हो जाते हैं। बिहार में जहां जल जमाव की समस्या है तथा वर्षा के दिनों में विषाणु रोग अधिक तेज़ी से फैलते है, वहां अगस्त के अंत में या सितंबर के शुरू में नर्सरी में बीज बोना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : पपीते को बहुत अधिक खादकी आवश्यकता होती है। इस क्षेत्रीय स्टेशन पर किए गए प्रयोगों द्वारा साबित हुआ है कि प्रत्येक फलने वाले पेड़ को 200-250 ग्राम नाइट्रोजन, 200-250 ग्राम फास्फोरस तथा 250-500 ग्राम पोटाश देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। साधारणत: उपरोक्त खाद तत्वों के लिए यूरिया 450 से 550 ग्राम, सिंगल सुपर फास्फेट 1200 से 1500 ग्राम तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश 450-850 ग्राम लेकर उन्हें मिश्रित कर लेना चाहिए। इसके बाद चार भागों में बांट कर प्रत्येक माह के शुरू में जुलाई से अक्तूबर तक पेड़ की छांव के नीचे पौधे से 30 सैंटीमीटर की गोलाई में देकर मृदा में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म तत्व बोरॉन (1 ग्राम प्रति लीटर पानी में) तथा ज़िंक सल्फेट (5 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव पौध रोपण के चौथे एवं आठवें महीने में करना चाहिए।

सिंचाई : पपीते के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जल प्रबंध बहुत ही आवश्यक है। जब तक पौधा फलन में नहीं आता, तब तक हल्की सिंचाई करनी चाहिए, जिससे पौधे जीवित रह सकें। अधिक पानी देने से पौधे काफी लम्बे हो जाते हैं तथा विषाणु रोग का प्रकोप भी अधिक होता है। फल लगने से लेकर पकने तक पौधों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। ऐसा देखा गया है कि पानी की कमी के कारण फल झड़ने लगते है। गर्मी के दिनों में एक सप्ताह के अंतराल पर तथा जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पपीते में टपक सिंचाई प्रणाली (ड्रिप) के अंतर्गत 8-10 लीटर पानी प्रति दिन देने से पौधे की वृद्धि एवं उपज अच्छी पाई गई है। इस प्रकार इससे 40-50 प्रतिशत पानी की भी बचत होती है। मृदा नमी को संरक्षित करने के लिए पौधे के तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या काली पॉलीथीन की पलवार बिछानी चाहिए।

फूल तथा फल लगना : पौधे लगाने के लगभग 6 माह बाद मार्च-अप्रैल से पौधों में फूल आने लगते है। पपीते में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लिंग नर, मादा एवं उभयलिंगी पाए जाते है। नर एवं उभयलिंगी पौधे वातावरण के अनुसार लिंग परिवर्तन कर सकते है, किन्तु मादा पौधे स्थायी होते है। नर एवं मादा पौधों की पहचान फलू के आधार पर कर सकते है। ज्यों ही नर पौधे दिखाई पड़ें, उन्हें तुरंत काट कर खेत से निकाल देना चाहिए, किन्तु परागण हेतु खेत में 10 प्रतिशत नर पौधे अवश्य छोड़ देनी चाहिए।

उपज : पपीते में औसतन प्रति पेड़ 50 से 100 किलोग्राम तक उपज प्राप्त होती है। फलों का भार 0.5 किलोग्राम से 3.0 किलोग्राम तक होता है। पपीके के एक अच्छे बाग से 300 से 350 क्विंटल फल प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष प्राप्त होते है। प्रति हैक्टेयर उपज बाग में फल लगने वाले पौधों की संख्या तथा प्रजातियों पर निर्भर करती है। ❑

एग्रो फॉरेस्ट्री के अधीन पेड़ लगाओ - पैसा कमाओ - पर्यावरण बचाओ अभियान में सहयोग कर रहा वन विभाग

पेड़ ऑक्सीजन का ही नहीं, कमाई का साधन भी बने, किसान हो रहे मालामाल

पंजाब के होशियारपुर में पौधे लगाने वाले 523 किसान पिछले साल 1 करोड़ 17 लाख 85 हज़ार 525 रुपए खातों में पहुंचने से हैं खुश

पेड़ ऑक्सीजन के साथ ही कमाई का भी साधन बन गए हैं। पेड़ लगाओ – पैसा कमाओ – पर्यावरण बचाओ एग्रो फॉरेस्ट्री योजना के तहत वन विभाग खेतों में पेड़ लगाने से लेकर देखभाल में सहयोग कर रहा है। इतना ही नहीं वन विभाग बीमा और मार्केटिंग में भी साथ खड़ा है।

इस योजना के अंतर्गत पिछले साल अपनी ज़मीन में पेड़ लगाने वाले होशियारपुर ज़िले के 523 किसानों के खातों में सरकार ने 1 करोड़ 17 लाख 85 हज़ार 525 रुपए और

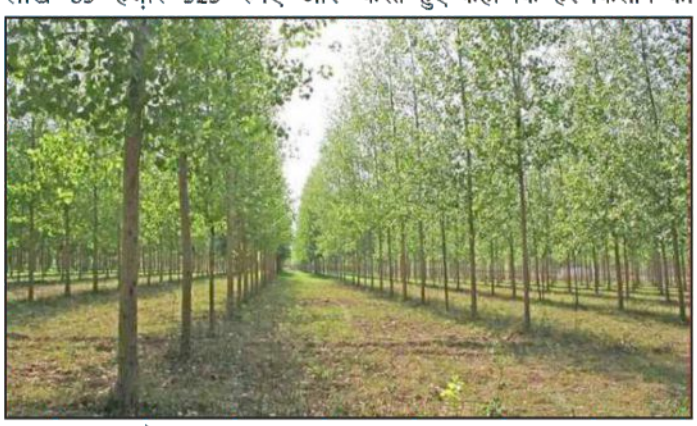

सब्सिडी के तौर पर मिलने वाली राशि सीधे उनके खाते में डाले हैं, जिससे किसान काफी खुश हैं। यदि हम बात प्रदेश की बात करें तो 1096 किसानों के खेतों में लगे पॉपुलर और सफेदे की देखभाल के लिए राज्य सरकार ने 3 करोड़ 35 लाख रुपए जारी किए हैं। जीवन बीमा की तरह वन विभाग पर्यावरण और भूजल के अत्याधिक दोहन से बचाव के लिए किसानों को धान की खेती की बजाय पौधे लगाने पर ज़ोर दे रहा है। बीमा से लेकर देखभाल के लिए सब्सिडी व पेड़ तैयार होने पर बाज़ार में सही दाम दिलाने को लेकर पिछले साल पेड़ लगाओ – पैसे कमाओ – पर्यावरण बचाओ योजना लेकर आई थी, लेकिन किसानों को यह योजना संदिग्ध लगी। हर पौधे की देखभाल के लिए मिलने वाले 50 रुपए पर भरोसा जता प्रदेश के 1096 प्रोग्रेसिव किसानों ने 39 लाख पौधे लगाए थे।

होशियारपुर ज़िले के गांव बाला कुलियां के प्रोग्रेसिव किसान राजेन्द्र सिंह, रवेल सिंह और गांव राज पालवा के प्रोग्रेसिव किसान जरनैल सिंह ने वन विभाग की योजना की प्रशंसा करते हुए कहा कि हर किसान को इसका फायदा उठाना चाहिए। खेत में लगे पौधे के बीच अन्य फसल भी लगने से किसानों को दोहरा फायदा हो रहा है। खेत में लगे पौधे की देखभाल के लिए 50 रुपए प्रति पौधा मिल रहे हैं। वहीं पेड़ तैयार होने पर वन विभाग ऑनलाइन मार्केटिंग के जरिए लकड़ी को बेचने में मदद करेगा।

योजना के तहत 523 किसानों की ज़मीन में लगे हैं लाखों पेड़

होशियारपुर के फॉरेस्ट डिवीज़न में तैनात डी.एफ.ओ. नलिन यादव (आई.एफ.एस.) ने बताया कि रेंज में इस योजना के अधीन अब तक 118 किसानों की ज़मीन पर लगे 2 लाख 55 हज़ार सफेदे व पॉपुलर की देखभाल के लिए पेड़ सब्सिडी के तौर पर 36 लाख 86 हज़ार रुपए जारी हुए हैं। वहीं फॉरेस्ट डिवीज़न दसूहा में तैनात डी.एफ.ओ. अंजन सिंह ने बताया कि अब तक 405 प्रोग्रेसिव किसानों की ज़मीन में लगे 2 लाख 83 हज़ार पौधों की देखभाल के लिए 80 लाख 52 हज़ार 525 रुपए जारी हुए हैं। उन्होंने बताया कि किसान अपने खेत में पौधे लगाने के साथ-साथ अन्य फसल लगा कर सरकार की इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। इसे देख ज़िले के किसानों में एग्रो फॉरेस्ट्री के रुझान में बढ़ोत्तरी हुई है।

किसानों के लिए पेड़ों की खेती किसी फिक्स डिपोजिट से कम नहीं : नॉर्थ सर्कल कंजरवेटर

वन विभाग में नॉर्थ सर्कल में तैनात कंजरवेटर डॉक्टर संजीव कुमार तिवाड़ी ने बताया कि किसान अपने खेत में अधिक से अधिक पेड़ लगा सरकारी योजना का लाभ उठा रहे हैं। एक तरफ किसानों को आर्थिक तौर पर फायदा हो रहा है, वहीं दूसरी तरफ पर्यावरण को सुधारने में भी उल्लेखनीय सहयोग मिल रहा है। पेड़ लगाओ – पैसा कमाओ योजना के अधीन किसानों के लिए पेड़ों की खेती किसी फिक्स डिपॉजिट की ही तरह काम करती है। एग्री फॉरेस्ट्री में जोखिम कम है और यह पर्यावरण एवं परिस्थिति संतुलन बनाए रखने में बहुत उपयुक्त है। इसके अलावा बेकार पड़ी बंजर, ऊसर, बीहड़ और अन्य तरह की अनुपयोगी ज़मीन पर बहुउद्देशीय पेड़ लगा कर ऐसी ज़मीन को भी उपयोग में लाया जा सकता है।

सरसों फसल में जैविक कीट नियंत्रण पर चार दिवसीय प्रशिक्षण का आयोजन

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के गुरुग्राम के शिकोहपुर स्थित कृषि विज्ञान केंद्र ने सरसों की फसल में जैविक कीट नियंत्रण विषय पर चार दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें क्षेत्र के 20 कृषकों ने भाग लिया।

प्रशिक्षण कार्यक्रम के कोऑर्डिनेटर एवं कीट वैज्ञानिक डॉ. भरत सिंह ने जानकारी दी कि रबी मौसम के दौरान पूरे जिले भर में सरसों

प्रशिक्षण में शामिल कृषकों को हानिप्रद कीटों व रोगों की पहचान सरसों की फसल के परिस्तिथिकी तंत्र में मौजूद किसान हितैषी कीटों के संरक्षण के बारे में जानकारी दी गई

फसल की खेती बहुत आयात से की जाती है। इस फसल में अंकुरण से लेकर परिपक्वता तक अनेकों कीटों तथा रोगों का संक्रमण जारी रहता है जो कि इस फसल की उत्पादन क्षमता को 10 से 35 प्रतिशत या इससे भी अधिक नुकसान करते हैं, जिनमें मुख्यत: सरसों का दगीला कीट, आरामक्खी माहू, रोयेंदार सुंडी तथा पत्ती का धब्बा रोग, अल्टरनेरिया झुलसा, सफेद रतुआ व तना सड़न रोग शामिल है इसके साथ ही सरसों के हानिकारक कीटों पर प्रभावी भक्षी कीट जैसे लेडीबर्ड बीटल, क्राईसोपेर्ला तथा सिरफिड मक्खी के ग्रब इन हानिप्रद कीटों का भक्षण कर उन्हें नष्ट कर देते हैं, जबकि डायरेटीला व ब्राकोन जैसे परजीवी कीट माहू एवं अन्य प्रकार के गिडार कीटों पर परजीवी के रूप में आश्रित रहकर उन्हें प्राकृतिक तरीके से मार दिया जाता है। प्रशिक्षण में शामिल कृषकों को हानिप्रद कीटों व रोगों की पहचान सरसों की फसल के परिस्तिथिकी तंत्र में मौजूद किसान हितैषी कीटों के संरक्षण, उनकी गुणन व वृद्धि तथा प्रबंधन हेतु प्रचलित जैविक कीटनाशकों के प्रयोग की विधि के बारे में जानकारी दी गई। यदि कृषक इन सभी तथ्यों को समझ कर लागू करें, तो 5,000 से 10,000 रुपए प्रति एकड़ फसल लागत में कमी तथा फसल के उत्पादन में 25 से 30 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इस चार दिवसीय प्रशिक्षण के सफलतम आयोजन पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए प्रशिक्षण में भाग ले रहे प्रगतिशील कृषक श्री सतबीर यादव ने केंद्र के सभी वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों के प्रति अधिक आभार प्रकट किया तथा सभी कृषकों को इस प्रशिक्षण से नवीनतम जानकारी को क्रियान्वित कर फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरित किया।